T.T.D. Religious Publications Series No. 1106
Price :

Published by **Sri M.G. Gopal,** I.A.S., Executive Officer,
T.T.Devasthanams, Tirupati and Printed at T.T.D. Press, Tirupati.

श्रीनिवास बालभारती

आण्डाळ्

हिन्दी अनुवाद

पुट्टपर्ति नागपद्मिनी

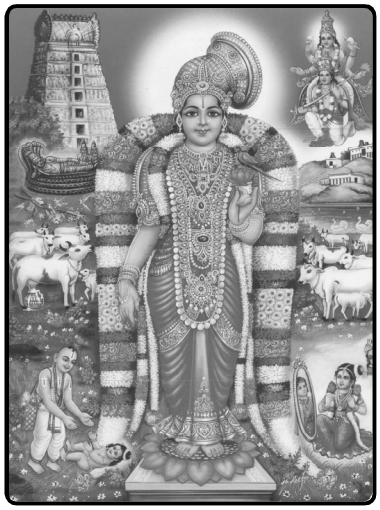

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्

तिरुपति

श्रीनिवास बालभारती - 158

आण्डाळ्

तेलुगु मूल

के.टी.येल. नरसिंहाचार्य

हिन्दी अनुवाद

पुट्टपर्ति नागपद्मिनी

तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्

तिरुपति

2014

Srinivasa Bala Bharati - 158
(Children Series)

ANDAL

Telugu Version
K.T.L. Narasimhacharya

Hindi Translation
Puttaparthi Nagapadmini

Editor-in-Chief
Prof. Ravva Sri Hari

T.T.D. Religious Publications Series No. 1106
©All Rights Reserved

First Edition - 2014

Copies : 5000
Price :

Published by
M.G. Gopal, I.A.S.,
Executive Officer,
Tirumala Tirupati Devasthanams,
Tirupati.

D.T.P:
Office of the Editor-in-Chief
T.T.D, Tirupati.

Printed at :
Tirumala Tirupati Devasthanams Press,
Tirupati.

दो शब्द

बच्चों का हृदय सुमनों की भांति निर्मल होता है। उत्तम कपूर से बढ़कर सुवासित उन के दिलों में बढिया संस्कार पैदा करना है। यदि उन में हम अच्छे संस्कार डालते हैं तो चिरकाल तक आदर्श जीवन बिताने के लिए सुस्थिर नींव पड जाती है। बचपन में संस्कार प्राप्त बच्चे भावी पीढियों के लिए समुचित मार्ग दर्शन कर सकते हैं। इसलिए हमारे इन होनहार बच्चों के लिए हमारी विरासत बने पौराणिक मूल्यों तथा इतिहास में निहित मानवता के मूल्यों का परिचय कराना अत्यंत आवश्यक है।

बिना लक्ष्य का जीवन निष्फल होता है। बच्चों को लक्ष्य की ओर प्रेरित कर उनके जीवन को सही मार्ग पर ले जाने की जिम्मेदारी बडों के ऊपर है। महान व्यक्तियों की आदर्शमय जीवनियों का परिचय करा कर उनमें प्रेरणा जगाने के उद्देश्य से 'श्रीनिवास बालभारती' का शुभारंभ किया गया है।

इस योजना का मुख्य लक्ष्य नैतिक मूल्यों के माधुर्य के बच्चों तथा सर्वत्र फैलाने का है। हमें यह जानकर अत्यंत आनंद हो रहा है कि बच्चे तथा परिवार के सभी लोग इन पुस्तकों का स्वागत कर रहे हैं। इससे तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् का मुख्य उद्देश्य कुछ हद तक सफल हो रहा है।

'श्रीनिवास बालभारती' की योजना तैयार करके उत्तम पुस्तकों का प्रकाशन करवा कर कम कीमत पर सब को उपलब्ध कराने का प्रयास, करनेवाले प्रो.एस.बी. रघुनाथाचार्य अभिनंदनीय हैं।

इस प्रकाशन में सहयोग देनेवाले लेखकों तथा कलाकारों के प्रति मैं अपना धन्यवाद अर्पित करता हूँ।

कार्यकारी अधिकारी
तिरुमल तिरुपति देवस्थानम्, तिरुपति

प्राक्कथन

आज के बच्चे कल के नागरिक हैं। अगर वे बचपन में ही महोन्नत सज्जनों की जीवनियों के बारे में जानकारी लें, तो अपने भावी जीवन को उदात्त धरातल पर उज्ज्वल रूप से जीने के मौके को प्राप्त कर सकते हैं। उन महोन्नत सज्जनों के जीवन में घटित अनुभवों से हमारी भारतीय संस्कृति, जीवन में आचरणीय मूल धार्मिक सिद्धान्तों तथा नैतिक मूल्यों आदि को वे निश्चय ही सीख सकते हैं। आज की पाठशालाओं में इन विषयों को सिखाने की संभावना नहीं है।

उपरोक्त विषयों को ध्यान में रखकर तिरुमल तिरुपति देवस्थान के प्रचुरण विभाग ने डॉ. एस.बी. रघुनाथाचार्य के संपादन में स्थापित ''बाल भारती सीरीस'' के अन्तर्गत विविध लेखकों के द्वारा तेलुगु में रचित ऋषि-मुनियों व महोन्नत सज्जनों की जीवनियों से संबंधित लगभग १०० पुस्तिकाओं का प्रकाशन किया। इनका पाठकों ने समादर किया और इसी प्रोत्साहन से प्रेरित होकर अन्य भाषाओं में भी इन पुस्तिकाओं के प्रकाशन करने का निर्णय लिया गया। प्रारम्भिक तौर पर इनको अंग्रेजी व हिन्दी भाषाओं में प्रकाशित किया जा रहा है। इनके द्वारा बच्चे व जिज्ञासु पाठकों को अवश्य ही लाभ पहुँचेगा।

इन पुस्तिकाओं के प्रकाशन करने का उद्देश यही है कि बच्चे पढें और बडे लोग इनका अध्ययन कर, कहानियों के रूप में इनका वर्णन करें, तद्वारा बच्चों में सृजनात्मक शक्ति को बढा दें। फल स्वरूप बच्चों को अच्छे मार्ग पर चलने की प्रेरणा निश्चय ही बचपन में ही मिलेगी।

आर. श्रीहरि
एडिटर-इन-चीफ
ति.ति.देवस्थानम्

स्वागत

श्रीनिवासदयोद्भूता बालानां स्फूर्तिदायिनी।
भारती जयताल्लोके भारतीयगुणोज्ज्वला।।

जब खण्डान्तरों में सभ्यता की बू तक नहीं थी तब भरतवर्ष अपनी सभ्यता, संस्कार,धर्म, नैतिकाचरण के लिए प्रसिद्ध हो गया था। जो इस पुण्य-भूमि पर जन्मता है वह धर्माचरण में स्थिर होकर अधर्म का सामना करता है और क्रमशः ईश्वराभिमुखी होकर यशोवान होता है। ऐसे महात्माओं के प्रभाव से हमारे जीवन इह-पर दोनों प्रकार लाभान्वित होते हैं। उनके आदर्शमय जीवनों से स्फूर्ति पाता है और समझता है कि मैं इस महान भारत का वारिस हूँ; परंपरागत इस संप्रदाय की रक्ष करना मेरा कर्तव्य है। ऐसी भावना से वह अपने देश की सेवा के लिए तैयार रहता है।

वास्तव में इस देश में कई धर्मात्मा, वीरपुरुष, वीरनारियाँ पैदा हुईं उन्होने संस्कृति की दृढ नीवं डाली है। हमारा भाग्य यही है कि हमारी पैतृक-संपदा के रूप में उज्वल इतिहास की परंपरा है। उनके आदर्शों के पालन करने से ही कोई विद्यावान-विज्ञानी बन सकता है। राष्ट्र के जीवन प्रवाह में वही विज्ञान अचल रहकर जीवन को सुशोभित करता रहता है। इसी सिलासले को आगे बढाने के लिए महात्माओं के जीवनों को संक्षिप्त रूप में आपके सामने रखता हूँ।

हे भारत के भाग्यदाता बालक-आइए-स्फूर्ति पाइए

एस.बी. रघुनाथाचार्य
प्रधान संपादक

एक बात...

इस श्रीनिवास बाल भारती श्रृंखला को प्रकाशित करने में तिरुमल तिरुपति देवस्थानम् का मुख्योद्देश्य यह है कि बच्चों में धार्मिक ज्ञान बढायें और बचपन में ही ऐसा ज्ञान उन्हें प्राप्त हो जाय तो वह आजीवन पर्यंत उन्हें उपयोगी होगा। इस प्रणाली के प्रधान संपादक थे - तत्कालीन उपकुलपति प्रमुख पंडित तथा रचनाकार - डॉ.एस.बी. रघुनाथाचार्य जी जिनके नेतृत्व में हजारों पुस्तकों को छोटे बच्चों तक पहुँचाया गया था।

हमारे इतिहास के अनेकानेक महापुरुष पतिव्रताएँ महावीर आदि भारतीय संस्कृति की आधार शिलाएँ हैं। उनकी जीवन गाथाओं को सुलभ सुंदर शैली में तथा सुंदर रूप में प्रकाशित किया गया था। अब, उनके साथ कुछ नयी रचनाओं को भी ति.ति.दे. ने प्रकाशित किया है। राज्य की विविध पाठशालाओं में इन्हें निःशुल्क भेजकर भारत के भविष्य नागरिकों को धार्मिक साहित्य को परिचित कराना, ति.ति.दे. का सत्कामना है।

काम कोई भी हो, बडों से ही उसका श्रीगणेश होता है। घर में बच्चों के प्रथम गुरु, माता, पिता ही होते हैं। इस कारण से, वे भी इस श्रीनिवास बाल भारती की रचनाओं का आदर कर, उन्हें पढकर उनकी महत्ता को उनके बच्चों को समझायें और उनसे पढायें। इसमें संदेह नहीं कि तभी वे भविष्य में आदर्शवान बन जायेंगे। आज के पौधे ही कल के वृक्ष हैं। इसीलिए, अभी से बच्चों में नैतिकता के मूल्यों आध्यात्मिक भावनाओं को बोयेंगे तो भविष्य में वे अवश्य वे उत्तम नागरिक बन आदर्श जीवन बितायेंगे। हमें विश्वास है कि इस संकल्प को ये 'बाल-भारती' ग्रंथ साकार करेंगे।

- प्रधान सम्पादक

श्रीराम

ॐ नमो वेंकटेशाय

आण्डाळ्

पाण्ड्य का राजा

अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवंतिका
पुरी द्वारवती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः

हमारे भारतीयों का दृढ विश्वास यह है कि तीर्थयात्राओं के द्वारा पुण्य और पुरुषार्थ के अलावा मोक्ष भी प्राप्त होता है। इस तरह मोक्ष को दिलानेवाले सात क्षेत्र अयोध्या, मथुरा, हरिद्वार, काशी, कांची, उज्जैन तथा द्वारिका हमारे देश में हैं। उत्तर भारत देश का क्षेत्र मथुरा के अलावा, दक्षिण भारत देश में भी मथुरा है।

यह दक्षिण मथुरा भी बहुत पुराना क्षेत्र है तथा इसका वैभव भी अवर्णनीय है। यहाँ मीनाक्षी सुंदरेश्वर जी का महान मंदिर है ''कंचि कामाक्षी, मथुर मीनाक्षी, काशी विशालाक्षी'' वाली उक्ति हमारे प्रांत में बहुप्रचलित है भी। सकल कलाओं का आगार होते हुए, यह क्षेत्र, दक्षिण, भारत का सर्वोन्नत आभूषण माना जाता है। अनेकानेक शास्त्रों, तथा विद्याओं का निलय होने के कारण इस नगर में संगीत, साहित्य कलाओं की देवी, सरस्वती जहाँ देखो वहाँ नाट्य में तल्लीन दिखायी देती है। धन, दौलत की कमी कहीं भी नजर नहीं आनेवाला यह महानगर, पुराने जमाने में पांड्य राजाओं के अधीन में रहता था। ये राजा, अपने धर्म और कला की रक्षा में, अनुशासन में तथा पंडितों के आदर - सत्कार में सुप्रसिद्ध थे।

मत्स्यध्वज नामक राजा, इस कथाकाल में, उस देश का शासक था। अपने पूर्वजों के सभी गुण, इस राजा में भरपूर थे। इस कारण, उसके राज में सभी लोग, किसी तरह की बाधाओं के बिना आध्यात्मिक संपत्ति के साथ, सुख जीवन बिता रहे थे।

ब्राह्मण का उपदेश

एक दिन, एक परदेशी ब्राह्मण तीर्थ यात्रा करते हुए, इस नगर में आ पहुँचा। उसने, दिन भर नगर के मंदिरों के दर्शन के साथ अन्य विशेषताओं का भर-पूर आनंद उठाया। एक अन्नदान शिविर में सुबह - शाम का भोजन कर, दिन ढलने के बाद उसी शिविर के बाहर विश्राम कर रहा था। नगर के समाचारों को जानने के लिए गुप्त वेष - भूषा में रातों में निकलनेवाला, उस नगर का राजा, इस ब्राह्मण के पास आया। ब्राह्मण की ज्ञान - संपदा का परिचय पाकर, राजा अचरज में पड गया। बातों बातों में, ऐसे ही किसी एक श्लोक को पढकर, उसकी व्याख्या करने की प्रार्थना राजा ने की।

वर्षार्थमष्टौ प्रयतेत मासान्
निशार्थमर्धं दिवसं यतेत
वार्धक्यहेतोर्वयसा नवेन
परत्र हेतोरिह जन्मना च

बरसात के दिनों में आवश्यक लकडी आदि वस्तुओं को, बाकी दिनों में ही जमाकर रखना पडता है। रात के समय में काम आनेवाली चीजों को दिन के समय में ही संभालकर रखना चाहिए। बुढापे में काम आने के लिए यौवन काल में ही, धन दौलत को समेटना अच्छा होगा।

इसी तरह परलोक प्राप्ति के लिए आवश्यक मार्ग को जीवन भर ढूँढकर पाना पडेगा।

मत्स्यध्वज की वेदना

इस श्लोक का तात्पर्य जानकर राजा, बडी सोच में पड गया। ''मैं तो एक महाराज हूँ। इसीलिए श्लोक में बतायी गयी पहली तीन जरूरतों के बारे में सोचने की आवश्यकता मुझे नहीं है। पर इस परलोक के बारे में मैं ने अब तक कभी सोचा ही नहीं। मैं कितना बुद्धिहीन हूँ? यह शरीर तो पानी का बुलबुला है। अशाश्वत है। इसी शरीर को अमिट समझकर, मैं ने मेरे यौवन काल को व्यर्थ ही बिता दिया। खैर, अब मैं कर भी क्या सकता हूँ? अब पछतावे होत क्या, जब चिडिया चुग गयी खेत! कम से कम, आँखें खोलकर, अभी से इस मानव जन्म के लिए युक्त परमार्थ को प्राप्त करने का प्रयास करूँगा।''

उस राजा के मन में कई देर तक ये ही प्रश्न मँडरा रहे थे - ''वहीं भगवान हम, सभी को मुक्ति दिलाता है, जिसके सद्‌गुणों का, कथाओं के रूप में कीर्तिगान करने से, ये सारे प्रापंचिक बंधन दूर हो जाते हैं। जिस भगवान को सदा मनन से समय का सदुपयोग होता है, तथा मुक्ति भी अनायास ही प्राप्त हो जाती है। उसी की प्रार्थना हमें करनी चाहिए। ऐसे भगवान कौन हैं? उसका पता लगाकर उसकी सेवा करना है। तब तक मुझे शांति नहीं मिलेगी। सुबह होते ही इस परतत्व का निर्णय करने के लिए वेद शास्त्र कोविदों को बुलाऊँगा और उनके वाद - प्रतिवादों में निर्धारित उस सर्वोन्नत भगवान का आश्रय पाकर मोक्ष को पाउँगा।''

इस तरह के विचार - विमर्श में ही किसी तरह राजा घर पहुँचा और सुबह तक इसी सोच में रहा।

कौन है सर्वोन्नत?

सुबह होते ही मत्स्यध्वज ने अपना पुरोहित संपत्पूर्ण को बुलाया और कहा - महात्मन्! सर्वोन्नत भगवान का पता लगाने के लिए सकल वेदांतविदों को आह्वानित कर विचार - विमर्श करना पडेगा। कल रात एक ब्राह्मण की हितोक्ति को सुनने के बाद, मेरा मन विचलित हो गया है। इसीलिए, इस विषय के बारे में एक विद्वत्सभा का आयोजन आप कीजिये। भाग लेनेवाले सभी पंडितों के लिए भोजन शयनादि सभी का प्रबंध भी करना होगा। इसकी घोषणा भी कर दीजिये कि इस गोष्ठी में विजय को प्राप्त करनेवाले पंडितोत्तम को परतत्व (सर्वोत्तम देवता का) शुल्क विजयोपहार के रूप में दिया जायेगा।''

राजा की आज्ञा को न कौन कह सकता है। तत्क्षण, अतिथियों के लिए आवासों का निर्माण किया गया। उनके मनोरंजन के लिए जलाशयादि तथा मदिरालयों की व्यवस्था भी की जाने लगी।

उस सभा में अपने सिद्धांतों को सुनाकर विद्याशुल्क के साथ विजय को भी पाने की इच्छा से देश विदेशों से असंख्याक पंडित - वृंद आने लगे। प्रजा भी उत्सुकता से उन पंडितों के वादोपवाद सुनने की वेला की प्रतीक्षा करने लगी।

विष्णुचित्त

मथुरा से पचास मील की दूरी पर श्रीविल्लिपुत्तूर नामक छोटा सा नगर है। देखने में छोटा होने पर भी सकल संपत्तियों और शिल्प कलादि

विद्याओं में यह नगर सुप्रसिद्ध है। पुराने जमाने में 'विल्लि' नामक राजा के अधीन में होने के कारण इस नगर को यह नाम पडा। हिरण्याक्ष से भूदेवी की रक्षा करनेवाले भगवान वराह स्वामी ने, इसी देवी की प्रार्थना पर 'वटपत्रशायी' के रूप में यहाँ अवतरित होकर इस नगर की शोभा बढाया। यहाँ की जनता की एक मात्र महत्वाकांक्षा है - इस स्वामी की सेवा - अर्चना।

अब फिर, परम भागवतोत्तम वहाँ के ब्राह्मणों की बात क्या कहें? उनमें से प्रमुख हैं - मुकुंदाचार्य नामक श्री वैष्णव! उनकी पत्नी का नाम है - पद्मावती। उस दंपती का ही संतान है भट्टनाथ - जिसका जन्म सन् 725 में हुआ। सदा सर्वदा भगवान विष्णु को, अपने हृदय - कमल में बसा लेने के कारण वह भक्त विष्णुचित्त के नाम से ही जाना जाने लगा। प्रह्लाद की तरह वह भी बचपन से ही हरिभक्ति में तल्लीन था।

नवविध भक्तिमार्गों के द्वारा, इस जगत के सकल जीवों में स्थित श्री महाविष्णु के दिव्य मंगल रूप की अविचलित मन से, सेवा करना ही भक्ति का परमोद्देश्य माना जाता है। लेकिन इस महाभक्त के विषय में यह उद्देश्य थोडा सा बदला। नव विकसित फूलों से, मालाओं को गूंथकर, स्वामी को समर्पित करना, उसकी सहजात प्रवृत्ति थी। इतना ही नहीं, स्वरचित गीत - मालाओं को भी स्वामी को समर्पित करना उसके रोज का काम हो गया। सुममालाओं से बढकर, उसकी गीत - मालाएँ ही उस वटपत्रशायी को प्रीतिपात्र बन गयीं।

भक्त जनों की सेवा

उस भक्त शिरोमणि के स्वच्छ सुंदर हृदय का आविष्कार करनेवाला विषय और एक भी है। वह है - उसकी विशिष्ट अतिथि - पूजा! यह लक्षण तो भक्त जनों के लिए अत्यंत आवश्यक है भी। उसके अतिथि-जन भी श्री महाविष्णु के परमभक्त ही रहते थे। 'मनुचरित्र' नामक पेद्दनामात्य की रचना में प्रवराख्य के अतिथि सत्कार सा ही है - विष्णुचित्त का सत्कार। उसकी धर्मपत्नी - पति सेवा परायणा होने के कारण उसकी इस सेवा में कोई बाधा न पहुँची।

(संस्कृत में इसे तदीयाराधना कहते हैं जिसका अर्थ है - उस भगवान से संबंध रखनेवाले भक्त जनों की आराधना) विष्णुचित्त की इस सेवा की व्याख्या श्रीकृष्ण देवराय विरचित 'आमुक्तमाल्यदा' काव्य के इस पद्य के द्वारा अच्छी तरह की जा सकती है।

आ निष्ठानिधि गेहसीम नडुरेयालिंचिनन् म्रोयु नेंते
नागेन्द्रशयानु पुण्यकथलुन् दिव्यप्रबंधानु सं
धानध्यानमु नास्ति शाकबहुता, नास्तुष्णता, नास्त्यपू
पो नास्त्योदनसौष्ठवं च कृपया भोक्तव्य मन् पल्कुलुन्

आधी रात में आये हुए अभ्यागतों को भी हरि का नामस्मरण सुनायी देता रहता है। आळवारों के दिव्य प्रबंधों का गान उस समय विष्णुचित्त करते रहते हैं। ''क्षमा कीजिये स्वामी! अच्छे शाक पाक नहीं हैं। बने हुए व्यंजन भी तो ठंडे पड गये हैं। मृष्टान्नं तो पता नहीं - ठीक बने हैं कि नहीं। चावल भी अच्छे नहीं ला सके हैं हम! फिर भी दया से

भोजन स्वीकार कर संतृप्त हो, हमें सम्मानित कीजिये स्वामी!'' इस तरह की बातें आधी रात की वेला में भी सुनायी देती रहती हैं।

पुष्पमाला समर्पण

तुलसी दलों की मालाएँ स्वामी को समर्पित करना ही विष्णुचित्त का जीवनोद्देश्य बन गया। इसीलिए, भक्त पोतना जैसा उसकी सहजात पांडित्य, पीछे पड गया। वह भक्त, अपने आंगन में ही बहुत बडा उपवन लगाया। उसमें बेला, गुलाब, जूही चंपा, चमेली जैसे फूलों के पौंधों का पोषण करने लगा। तुलसी वन का सौंदर्य तो है ही। इस उपवन को 'नंदनवन' भी कहते थे। पौंधों को पानी देना, खाद डालना, अच्छे से अच्छे फूलों को चुनकर सुंदर मालाओं को गूँथना - यही विष्णुचित्त का काम था। अपने उपवन के फूलों से बढकर खुशबू बिखेरनेवाले मृदु मधुर गीतों को रचकर स्वामी को तथा अपने शिष्यों को सुनाना भी उसका नित्यकृत्य हो गया। इन कविता की मालाओं के संग्रह का नाम ही ''पेरियाळवार तिरुमोळि'' कहते हैं। विष्णुचित्त का उपनाम 'पेरियाळवार' होने के कारण यह ग्रंथ इसी नाम से सुविख्यात हो गया।

स्वामी की आज्ञा

उसी समय मथुरा में परतत्व निर्णय से संबंधित विद्वत्सभाओं का आयोजन हो रहा था। 'वटपत्रशायी' स्वामी ''मन्ननार स्वामी'' के नाम से भी सुप्रसिद्ध हैं। उन्होंने सोचा - 'सामान्य जनता को सुलभ शैली में मोक्ष के मार्ग को समझाकर, मेरा नित्य निवास 'श्री वैकुंठ' में प्रवेश कराने का धर्म है - श्री वैष्णव धर्म। धीरे धीरे इसकी क्षति हो रही है।

इस घोर - अवस्था में, अब प्रजा को नारायण की तरफ आकृष्ट करने का समय आ गया है। मथुरा में आयोजित किये जानेवाले वाद-प्रतिवादों में भाग लेकर, मेरे धर्म को सर्वोपरि उद्घोषित करने का सामर्थ्य मात्र इस विष्णुचित्त में ही दिखायी दे रहा है। इसीलिए इस भक्त को ही उस विद्वत सभा में भेजकर, परतत्व - निरूपण करवाऊँगा।''

उसी रात स्वमी ने सोते रहे विष्णुचित्त के पास जाकर उसे जगाया। उस अद्भुत स्पर्श से चौंककर, वह भक्त, नींद से उठ गया और देखा कि अपने जन्म जन्मों का भाग्यफल वटपत्रशायी स्वामी सामने खडे हैं। अब, उसके अनगिनत आनंद का वर्णन कोई कैसे कर सकता है? भगवान के दर्शन की परवशता में उच्छ्वास निश्श्वासों को भी भूल, खडे हुए भक्त को मन्ननार का आदेश इस तरह सुनायी दिया - ''हे भक्त शिरोमणी! मथुरा की पंडित सभा में परतत्व निरूपण होने जा रहा है। जहाँ महान पंडित वाद - विवाद करते हैं। कल ही तुम मेरे छत्र - चामरादियों को लेकर अपने शिष्यों के साथ - मथुरा जाओ और भरी सभा में मेरे परतत्व का निरूपण करो। विजय तुम्हारा ही है। इसके द्वारा प्राप्त विद्या शुल्क का तदीयाराधना में, खुलकर उपयोग करो।''

वाद-विवाद करने की क्षमता और मैं?

भगवान की बातें सुनकर विष्णुचित्त पसीना - पसीना हो गया। थर थर काँपते हुए उसने जवाब दिया - ''हे स्वमी! किसी कोने में बैठकर फूल मालिकाओं और गीत मालिकाओं को गूँथते हुए आपकी सेवा में समय को बितानेवाला मैं कहाँ और पंडितोत्तमों से भरी वे विद्वत्सभाएँ कहाँ? दोनों में कुछ साम्य ही नहीं है। मेरी यह विनम्र प्रार्थना है कि किसी

योग्य व्यक्ति को चुनकर इन सभाओं में भेजना अच्छा है। अगर मैं वहाँ जाकर, इस सभा में हार जाऊँ और आपके वैभव पर आँच आवे तो इससे बढकर कलंक क्या होगा? उसे जितना भी साफ करें, जायेगा ही नहीं। इस भार को मेरे सर पर लाद, मुझे क्यों डुबो रहे हो?''

इस संदर्भ में आमुक्त माल्यदा का यह पद्य कितना सुंदर है?

स्वामी नन्नु नितःपुरापठितशास्त्रग्रंथजात्यंधु न
रामक्ष्माखननक्रियाखर खनित्र ग्राहितोद्यात्किण
स्तोमास्निग्धकरुन् भवद्भवनदासुन् वादिगा बंपुचो
भूमीभृत्सभनोटमैन नयशंबुल् मीकु राकुंडुने?

स्वामिन्! उन शास्त्र ग्रंथों को अब तक मैं ने देखा तक नहीं। सदैव पौंधों को पानी देने, खाद डालने में ही मेरा समय बीत जाता है। मेरी बातों पर विश्वास न हो तो मेरे इन हाथों को एक बार परखिये और देखिए इनमें कितने छाले पडे हैं। मेरे जैसे अनपढ दास को उस सभा में अगर भेजेंगे तो आपको अपयश मिलेगा ही।

जीत तुम्हारी ही है

जवाब में स्वामी ने कहा - ''अरे ओ भट्टनाथ! तुम्हारा तो पंडितों का वंश है। यह बेकार झिझक क्यों? तुम्हारे हृदय में मैं ही बैठकर, जीभ से मैं भी अपना वाद सुनाकर, विजय तुम्हें दिला दूँगा। इसीलिए बिना कोई संकोच के, कल सुबह ही रवाना हो जाओ!''

अब फिर देर किस बात की? स्वामी की आज्ञा पाकर विष्णुचित्त अगले दिन सुबह ही, स्वामी के छत्र चामरादि चिन्हों और अपने शिष्य गणों के साथ, मथुरा के लिए निकल पडा।

परतत्व विवेचन

राजधानी मथुरा में विद्वत्सभाओं के लिए खूब सारी तैयारियाँ हो रही हैं। विविध वेदों और शास्त्रों में पंडितोत्तम, आ पधारे हैं। सभी लोगों को राजोचित सत्कार किये जा रहे हैं। विष्णुचित्त भी अपने शिष्य - प्रशिष्यों के साथ मथुरा पहुँच गया। साक्षात् ब्रह्माजी के तेज से मूर्तिमान विष्णुचित्त के आगमन का समाचार मिलते ही मस्त्यध्वज अपने पुरोहितों, अमात्यों एवं सामंत राजाओं के साथ, उसका स्वागत कर अर्घ्य, पादोदकादि से अर्चना - पूजा कर, उसके लिए अतिथि गृह का प्रबंध भी किया।

एक साधारण मंदिर के पुजारी को इस तरह के विशेष सत्कार मिलते हुए देख अन्य पंडितों के दिल जलने लगे। ईर्ष्या से, विष्णुचित्त की खूब निंदा भी वे करने लगे। वहाँ के अन्य पुरोहित, अपने प्रिय - वचनों से उन्हें शांत करने लगे। आखिर किसी तरह, वातावरण शांत हो गया। कुछ पंडितों के विविध वक्तव्यों को सुनने पर भी सभा के आयोजक संतुष्ट न हो सके।

विष्णुचित्त का कथन

अब, भट्टनाथ की बारी आयी। श्री वैष्णव धर्म के अनुसार, श्रीमन्नारायण को ही परमात्मा सिद्ध करने के लिए उद्यत होते हुए, पहले पहल आँखें मूँदकर भगवान विष्णु की वंदना उसने की। तत्क्षण सकल वेद वेदांगों का सार उसकी मुट्ठी में समा गया। सभा में आसीन पंडितों को लगा कि विष्णु ही मानो उसके मुँह में बैठकर इस तरह अपना कथन सुना रहे हैं।

''सकल पदार्थ वेदों में हैं। वेदों का मूल ओंकार है। उसकी व्याख्या ही नारायण का अष्टाक्षरी मंत्र है। अ + उ + म इन तीन अक्षरों का संगम ही है - ओंकार! यही प्रणव है। अकार नारायण है तथा मकार जीव है। उकार नारायण और जीव इन दोनों के बंधन का विवरण देता है। वेदों का आद्यक्षर - अकार ही वेदांत - याने कि ब्रह्मविद्या का मूल है। इसीलिए गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि मैं अक्षरों में अकार हूँ। इस विषय में इससे बढकर कोई और उदाहरण क्यों चाहिए?''

विनाश रहित यह जगत भी अक्षर है। इसकी सृष्टि जिसने किया वही परमात्मा है। और वही परतत्व है। सकल प्राणियों को मोक्ष देनेवाला परात्पर भी वही है। वह है जनार्दन। ''मोक्षमिच्छेत् जनार्दनात्'' सूक्ति का तात्पर्य यही है न? इसीलिए अकार स्वरूप श्रीहरि मात्र ही मोक्ष को दिलाता है। इस सारे जगत का, नारायण ही में से जन्म हुआ, उसी में से इसका विकास हुआ और आखिर उसी में यह विलीन भी होता है। इसीलिए एक मात्र यह नारायण तत्व ही परतत्व है।

स्वामी प्रत्यक्ष हुए

विष्णुचित्त का वक्तव्य पूरा होते ही उसी क्षण, सभा के स्तंभाग्र में डोर से बाँध रखी हुई 'परतत्व शुल्क' की गठरी, नीचे आ गिरी। विष्णु को ही परतत्व निर्धारित करनेवाला यह वक्तव्य सहेतुक भी होने के कारण सभी सदस्यों को 'हाँ में हाँ' मिलाना ही पडा। गोष्ठी में भाग लिये हुए अन्य पंडितों के मुँह फीके पड गये। सभासदों की तालियों से सभा भवन गूँज उठा। विष्णुचित्त का भव्य रूप में सम्मान हुआ। उसे हाथी पर बिठाकर नगर की वीथियों में ले गये। अपने भक्त का परतत्व निरूपण

गोष्ठी में विजय और उसका अपूर्व सम्मान भी देखकर भगवान विष्णु का मन आनंद विभोर हो गया। भू-नीळा देवेरियों के साथ, गरुड वाहन पर आसीन होकर, उस भरी सभा में प्रत्यक्ष अपने स्वामी को देखकर विष्णुचित्त का मन भी भक्ति की परवशता में तल्लीन हो गया। ब्रह्मा, शिव, महेन्द्रादियों को भी अगोचर परात्पर स्वामी, अपने मांसल नेत्रों के सामने आ खडा हो जाये तो फूला न समाना, किसी भी भक्त के लिए स्वाभाविक ही है न?

मंगलाशासन

भरी सभा में इस तरह प्रत्यक्ष श्रीमन्नारायण को सभी लोगों की नजर लगे तो क्या होगा? अगर उस स्वामी की महिमा को आपत्ति आ पहुँचे तो कैसे? भट्टनाथ के मन में यह संशय पैदा होते ही उससे रहा नहीं गया। स्वयं जिस गजराज पर बैठा हुआ है उसी की घंटियों को लय - वाद्य बनाकर स्वामी को मंगलाशासन वह सुनाने लगा जो आगे 'तिरुप्पल्लांडु' नाम से दिव्य प्रबंध - समुदाय के लिए ओंकार रूप मुकुट हो गया। इस प्रबंध में रचित बारह गीतों को 'पाशुरम्' भी कहते हैं।

''पल्लाण्डु पल्लाण्डु पल्लाइरत्ताण्डु पलकोडि नूराइरम्
मल्लाण्ड तिण्णोळ् मणिवण्णा! उन् शेवडि शेल्वि तिरुक्काप्पु''

महान शक्तिशाली चाणूर मुष्टिकादि असुरों को खटमलों की तरह नोच डालकर उनके अहंकार को मिटानेवाले बलवान स्वामी! तुम्हारे उन सशक्त बाहुओं का कल्याण हो। तुम्हारे उन श्री चरणों को सैकडों, हजारों लाखों, करोडों वत्सरों तक मंगल हो!

पेरियाळ्वार उपाधि

अपने आशीर्वाद के रूप में, विष्णुचित्त के गाये हुए इन गीतों को सुनकर स्वामी बहुत खुश हो गये। अपने इस भक्त को ''पेरियाळ्वार'' नाम से उन्होंने संबोधित किया जिसका अर्थ है - बहुत बडा भक्त! उस दिन से विष्णुचित्त - उसी नाम से सुप्रसिद्ध हो गया। आळ्वार का अर्थ है - रक्षक जो अगाध भक्ति सागर में स्वयं डूबकर अपने लोगों को भी डुबोकर, उबारकर उन्हें आनंद दिलानेवाला।

सुंदरी की कल्पना में

मेरी बेटी लहंगे को भी ठीक तरह पहनना जानती नहीं हैं। इतनी छोटी उम्र की मेरी लाडली, अपनी सहेलियों के साथ खेलने में तल्लीन कैसे हो गयी है? उसकी ये चेष्टाएँ मुझे तो अच्छी ही लग रही हैं। लेकिन गाँववाले क्या कहेंगे? बचपन से मेरी बेटी को मैं कितने ही लाड - प्यार से पाल - पोस रहा हूँ। वह जमीन पर पाँव रखे तो भी मैं सह नहीं सकता हूँ। इतने प्यार से उसकी देखभाल करनेवाली अपनी इस माँ से भी छिपा रही है। अपना दिल खोलकर बता नहीं रही है। क्यों? इस तरह माँ सोच रही है।

तो उधर बेटी के मन में क्या चल रहा है? उसका मन उसके अधीन में नहीं हैं। उसका कोमल हृदय किसी की ओर आकर्षित हुआ है। अपने उस मनोहर पर मन को केन्द्रीकृत करने का प्रयत्न वह कर रही है।

विविध स्वर्णाभूषणों को अपने गले में डाल लेती है। उन सबके साथ अपनी सुंदरता को परखने के लिए आइने में अपने प्रतिबिंब को देखती रह जाती है। यह सब क्यों? किसके लिये? अपने लिये तो नहीं। शायद, मनोहरी अपने उस प्रिय के लिए यह सब कर रही है। आखिर कौन है

वह भाग्यवान? इस सोनपरी के लिए युक्त वह नवमन्मथ कौन होगा? खैर, हम भी उसी की तरह क्यों बेताब हो जायें? सच्चाई तो किसी न किसी दिन सामने आयेगी ही। मिट्टी में बोया हुआ बीज, अनुकूल ऋतु में पौधा बनकर बाहर आता ही है न?

अभी तक लहंगा तक ठीक तौर से न पहन सकनेवाली बालिका अब महंगी साडियों को भी सुंदर तरीके से पहनना सीख गयी है। और वाह, यह साडी कितनी खूबसूरत है? पता नहीं यह साडी ही सुंदर है या तो फिर बालिका के पहनने से सुंदर लग रही है? और, कितनी देर लगा रही है साडी पहनने में! इसी तरह घंटों पहनती रहेगी तो शायद सारा गाँव नींद में भी डूब जायेगा।

''अब तो देखो, गहनें पहन रही है। लेकिन, लगता है, ये गहने भी घंटों पहनेगी। और, वे चूडियाँ कहाँ गयी? उन्हें पहनी हूँ कि नहीं। मोतियों का हार वह कहाँ गया है? अरे भगवान! मुझे क्या हो गया है। कहीं गलती से हाथों का गहना पाँवों को, या पाँवों का गहना हाथों को पहन लूँगी तो कैसा लगेगा मेरे स्वामी को? अरे, यह मैं क्या कर रही हूँ? पहने हुए आभूषणों को ही फिर से निकाल रही हूँ और फिर से पहन रही हूँ। इतनी मूर्खता मुझ में कहाँ से आ गयी है?'' ये हैं - उस लडकी की भावनाएँ।

खैर, आखिर किसी भी तरह इन गहनों को पहनना भी हो गया है। अब इन सब के साथ मेरी खूबसूरती को भी देख हूँ तो? अब वह सुंदरी आइने के सामने जा खडी हो गयी - डगमगाते कदमों और हृदय से!

सर से पाँव तक अपने प्रतिबिंब को एकटक देख रही है - ''अरे! मुझे पता ही नहीं कि मैं इतनी सुंदर हूँ! मेरी खूबसूरती मुझे ही मोहित

कर रही है। यह कैसे? कही यह सब जंगल में चाँदिनी की तरह निरुपयोग हो जायें, तो क्या करें? लेकिन ऐसा क्यों सोचे भला?''

इन भावनाओं में व्यस्त उस सुंदरी को पता नहीं क्या हुआ, फिर से आइने में अपने प्रतिबिंब की तरफ ध्यान से देखने लगी। वह सोचने लगी - ''मेरे ये ओंठ इतने लाल हैं। इनकी सुंदरता क्या मात्र मेरे ही देखने के लिए है?''

इतनी रूपवती पुत्री को देखकर भला कौन सी माता का हृदय संतोष से उमड न पडता है खैर? उस माँ के हृदय में क्या चल रहा है तनिक जानें।

''कितने लाड - प्यार से मैं ने इसे पाला पोसा है। उसकी शील - संपदा को देखकर लोगों को उसकी तारीफ करते हुए देखती हूँ तो मुझे गर्व होता है कि मैं ही इस सुगुणवती की माँ हूँ। लेकिन मेरी यह लाडली, आखिर अपनी इस माँ को भी अपनी वेदना के बारे में बताती ही नहीं। इकलौती बेटी है। इसकी वेदना को कैसे दूर कर सकूँगी हे भगवान?''

बेटी छोटी हो या सयानी, माँ के लिए तो हमेशा प्यारी ही होती है न? पेरियाळवार ने अपनी कल्पना में बनी इस कन्या के हृदय स्पर्शी वर्णन से सबों के सामने उसके रूप को प्रत्यक्ष कराया। इतनी सारी अनुभूतियों का मनोहारी वर्णन कर रसिक पाठकों को आनंद सागर में डुबोकर उबारना, मात्र महर्षियों को ही साध्य है। इस संदर्भ में यही कह सकते हैं कि वे सब अतुलनीय हैं। (इस भाग की सभी अभिव्यक्तियाँ विष्णुचित्त की रचना ''पेरियाळवार तिरुमोळि'' दिव्य प्रबंध में से ली गयी हैं।)

सोने का पौधा

अपने ही हाथों से पुष्प मालिकायें गूँथकर स्वामी को समर्पित करना ही पेरियाळवार का जीवनोद्देश्य था। माला बनाने में हर दिन नई विधा को ढूँढ निकालना उसकी प्रवृत्ति रही। अनेकानेक रंगों के सुमनों से इन्द्रधनुष सी सुंदर मालाओं को गूँथकर, स्वामी को समर्पित करना ही उसका मुख्य लक्ष्य था।

एक दिन हर रोज की तरह, पौधों के बीच काम कर रहा था। पता नहीं, उस दिन उसका मन अत्यंत उत्साह से झूम रहा था। अचानक एक तुलसी के पौधे के पास एक सुवर्ण कांति सी उसे दिखायी दी। सामने जाकर देखा तो एक सुंदर बालिका हाथ पैर हिलाती हुई लेटी है। विष्णुचित्त को अपनी ही आँखों पर विश्वास नहीं हो रहा था। शायद यह

प्राण होनेवाली सोने की गुडिया है। इतनी प्यारी बिटिया को कोई भी माँ ऐसे कैसे पेड के नीचे छोड जा सकती है? वह कितनी पत्थर दिलवाली होगी?

खैर, मेरी तो कोई संतति नहीं है। इतना विचार विमर्श मैं अब क्यों करूँ? घर ले जाकर इसे पाल पोस लूँगा बस! शायद यह उस वटपत्रशायी ही की लीला होगी जो यह बच्ची मुझे मिली है।

नामकरण

महाराजा जनक को हल की लीक में उस दिन सोने की गुडिया सीता के मिलने से जिस तरह का अनगिनत आनंद मिला, वैसा ही आनंद अब विष्णुचित्त को भी मिला। बहुत बडी सजगता से उस गुडिया को घर ले जाकर, खुशी खुशी अपनी धर्मपत्नी को दिया और कहा कि इस बच्ची का सतर्क पालन पोषण करना चाहिए। उस नन्हीं सी गुडिया को देखकर विष्णुचित्त की पत्नी भी फूला न समायी। उन्होंने इस बालिका का तमिल में नाम रखा ''कोदै'' माने ''फूल की माला''।

उस दिन से उनके घर में एक रौनक सी आ गयी। बालिका तो विदिया की चन्द्रमा की तरह दिन ब दिन बडी हो जाने लगी। उसकी सुंदरता की तरह उसके गुण और सदाचार भी उतने ही सुंदर थे। कालिदास की सूक्ति ''यत्राकृतिस्तत्र गुणा भवन्ति'' भी यही कहती है न?

कोदै - गोदा बन गयी है!

फूल की खुशबू तो उसकी पैदाइश से ही फैल जाती है। यह सूक्ति तो इस बालिका के विषय में अक्षरशः सत्य निकली। माता - पिता को

यह विश्वास हो गया कि यह भूदेवी का अवतार ही है। इसीलिए उसका नाम भी 'गोदादेवी' हो गया। गो का अर्थ है ''भूमि''। भूमि में ही मिलने के कारण, भूदेवी की देन समझना तो स्वाभाविक ही है। आस पास के लोग भी बडे गौरवादर के साथ रहते थे। पिता की तरह उसकी यह पुत्री भी भक्ति ज्ञान वैराग्यादि सुगुणों की निधि बन गयी। अपने सद्गुणों से लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेनेवाली इस बालिका रत्न को देखकर पिता मन ही मन खुश होता था कि सचमुच मुझे इस बालिका के रूप में एक अमूल्य रत्न ही मिल गया है। श्रीवैष्णव धर्मावलंबियों के लिए आवश्यक पंच संस्कारों को भी बालिका ने पिता से प्राप्त किया।

भागवतों की सेवा

सूर्योदय के पूर्व ही से उस घर से श्रीहरि के संकीर्तन सुनायी देते थे। जैसे कहा जाता है कि जो बोओगे, सो काटोगे, ठीक उसी तरह पिता जी की शिक्षा - दीक्षा में, बेटी भी ठीक उन्हीं की तरह सुगुणवती होती गयी। उन्हीं के साथ साथ, उठना बैठना भगवान के संकीर्तन गाना, पिताजी की ''तदीयाराधना'' (भगवद्भक्तों का आतिथ्य) में भाग लेना उसका नित्यकृत्य हो गया।

पिताजी भागवत में से श्रीकृष्ण लीलाओं को सुना रहे हो तो उसमें तल्लीन होकर स्वयं को एक गोपिका मानकर विरहाकुल हो जाती थी।

इस बालिका के यहाँ पर अवतरित होने से मानो श्रीविल्लिपुत्तूर गाँव में एक नूतन छवि आ गयी। हरि का निरंतर नाम स्मरण से गाँव के लोग कहते थे कि हमने तो वैकुंठ के बारे में खूब सुना लेकिन अब हमें लग रहा है कि इस कलियुग का वैकुंठ तो यही है - हमारे सामने। तो फिर यात्रियों के विचार भी कुछ ऐसे ही थे - ''इतिहास में यह बात तो साबित

हो ही गयी है। सीतादेवी के जन्म के बाद मिथिला भी ऐसी ही थी न? नीलादेवी के कारण गोकुल तो क्षीर सागर ही बन गया है। महान भक्त अपनी साधना - तपस्या के लिए ऐसे ही प्रदेशों को चुन लेते हैं।''

''हरिः परायणम् परं हरिः परायणं परम् ।
पुनः पुनर्वदाम्यहं हरिः परायणं परम् ।।''

हरि ही हमारे स्वामी हैं। उनसे बढकर स्वामी कोई और नहीं हैं।

हरेर्नामैव नामैव हरेर्नामैव केवलम्
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा।।

हरि के नाम मात्र से हमारे सारे भव बंधन छूट जाते हैं। इस भयानक कलिकाल में हरि के नामोच्चारण से बढकर कोई और उपाय नहीं हैं। उस बालिका की साधना को देखने से लगता था कि उसने शायद इन श्लोकों के अर्थ को ही अपना लक्ष्य बना लिया है।

इतने में वह बालिका यौवन में प्रवेश कर गयी। देखते ही देखते उसके शरीर पर सुंदरता राज करने लगी। यौवन के साथ श्रीमन्नाराण जी का भी राज उस पर चलने लगा। भूमिजा उस रूपवती से भला भगवान कैसे दूर रह सकते हैं? भूदेवी की सहेलियाँ नागकन्यायें भी उसी गाँव के अन्य वैष्णवोत्तमों के परिवार में पैदा होकर उसकी सहेलियाँ बन गयी हैं। ये सभी मिलकर श्रीमन्नारायण की सेवा दिन रात जो कर रही हैं, वह तो अवश्य देखने का दिव्य संदर्भ है।

मुझसे ही बढकर!

यौवन, मेधा तथा सुंदरता, इन तीनों का संगम ही गोदा लग रही है। पिताजी पेरियाळ्वार को अन्य भगवद् भक्तों के साथ भजन कीर्तन करते

हुए उसने देखा। उन भक्ति गीतों को गौर से उसने सुना। भक्ति की परवशता में नृत्य भी करते हुए पिताजी को देख उसके खेल कूद भी कृष्णमय हो गये। पिता की कल्पनाशक्ति भी उसमें बिना किसी कोशिश के ही प्रवेश कर गयी। उसकी इस रुचि को देखकर विष्णुचित्त आनंद विभोर हो गया कि मेरी बेटी, बुद्धिमत्ता और कविताशक्ति में मुझसे भी आगे बढ जायेगी अवश्य।

क्यों दुबली होती जा रही है?

संसारिक विषयों को छोडकर गोदा का प्रेम श्रीकृष्ण के प्रति ही केन्द्रीकृत हो गया है। ''निराश्रया न शोभन्ते पंडिता वनिता लताः'' - आधार के बिना पंडित, स्त्रियाँ और लताएँ शोभित नहीं होते हैं। इसी उक्ति के अनुसार, गोदा ने भी अपने लिए किसी साधारण मानव को योग्य वर न चुनकर, पुरुषोत्तम को ही अपना स्वामी चुना। तत्क्षण से ही उस स्वामी के विरह में गोदा तडपने लगी और उसका शरीर कृशित हो जाने लगा। अपनी इस अवस्था को पिता से छुपाती रही लेकिन उसे मालूम नहीं था कि पिता को बताने में ही उसका लाभ है क्योंकि कोई भी उपाय ढूँढकर अपने स्वामी तक पिता ही उसे पहुँचा सकते हैं।

दिन ब दिन दुबली होती जा रही बेटी की दुरवस्था को देखकर, पिता से सहा नहीं जा रहा है। ''अपनी कविता में मैं ने जो लिखा है, बिलकुल वही है, अब गोदा की स्थिति! लेकिन इसकी यह चिंता, मुझे भी खाये जा रही है। कितना भी सोचे इसका कारण तो मुझे सूझ नहीं रहा है। मैं क्या करूँ?'' विष्णुचित्त के मन में इस तरह के विचार माँडरा रहे हैं।

आमुक्तमाल्यदा

पिताजी तो हर दिन विविध कुसुमों से मालाएँ बनाकर 'मन्ननार' को समर्पित कर रहे हैं। एक दिन गोदा ने देखा कि मालाओं को गूँथ गमले में रखकर पिताजी कहीं बाहर चले गये। वह धीरे से गमले के पास गयी जिसमें वे, भगवान के लिए गूँथी हुई मालाएँ रखी हुई हैं। मालाओं पर हाथ फेरा उसने! वाह! कितनी सुंदर मालाएँ हैं? लेकिन वे स्वामी और कितने सुंदर होंगे जिनके लिए ये मालाएँ गूँथी गयी हैं? अकेले ही इन मालाओं को पहनकर, क्या वे इनका आनंद उठा पायेंगे? साथ में उनके लिए योग्य कोई सुंदरी भी हो तो ही ये मालाएँ उन्हें अधिक आनंद दे सकती हैं न?

उस अतिलोक सुंदर स्वामी को ही अपना पति मान रही हूँ मैं। अगर उनके साथ मैं रहूँगी तो उन्हें कैसे लगेगा? इन मालाओं को मैं भी जूडे में पहन सकती हूँ न? गले का हार बना लूँगी भी। लेकिन पता नहीं यह भाग्य मेरी तकदीर में लिखा है कि नहीं, क्यों नहीं होगा? असल में मैं इसके लिए कुछ कोशिश कर ही नहीं हूँ न! पहले कुछ भी तो कोशिश करें तो उसका फल तो अवश्य मिलेगा। इसीलिए ही तो हमारे पूर्वजों ने कहा - ''कृषितो नास्ति दुर्भिक्षम्।'' भगवान को ही अपना पति जो मैं मान रही हूँ तो, मेरी मनोकामना, मेरी कोशिश से ही पूरी अवश्य होगी।

इन विचारों में डूबी गोदा को अब कुछ विश्वास सा मिल गया। प्रियतमा और प्रिय दोनों, सुख - दुःखों में समान रूप से भाग लेते हैं। लेकिन दुःख को ही पहले कौन अपनाते हैं भला? इसीतरह मुझे भी पहले अपने स्वामी के साथ सुख ही चाहिए स्वामी के लिए बनी फूल मालाओं को पहनने के द्वारा!

स्वामी से पहले मालाएँ पहनना

इतनी सुंदर मालाओं को तो मेरा प्रिय, हर दिन पहले स्वयं पहन तो रहा है। एक दिन अगर इन्हें पहले मैं पहनकर बाद में उन्हें भेजूँ तो क्या यह अपराध हो जाता है कहीं?

ऐसी भावनाएँ मन में प्रवेश करते ही गोदा ने गमले में रखी मालाओं में से एक को गले में और एक को तो जूडे में धर कर आइने के सामने खडी हो गयी। अपने प्रतिबिंब को निखारते हुए - अपनी सुंदरता पर आप ही मोहित हो गयी। ''हाँ! उस जगदेक पति को ही आकृष्ट करने की क्षमता है मेरी इस सुंदरता में!'' उसमें विश्वास आ गया।

बस, इस काम को करने से अपने आप को वह रोक ही न पाई। हर दिन मालिकाओं का धारण करती है। अपनी सुंदरता को परखती है। अति सुंदर, उस प्रिय के लिए, अपनी सुंदरता, का ताल - मेल कैसे होगा? इस तरह का विचार विमर्श कर, आखिर इस निर्णय पर आ

जाती है कि 'हाँ मैं, मेरे प्रिय के लिए योग्य कन्या ही हूँ।'' इसके बाद चुपचाप मालाओं को निकालकर फिर से गमले में रखकर, भोली भाली सी रहना, उसका नित्य कृत्य हो गया।

इतनी हिम्मत कैसी?

कोई भी रहस्य अधिक समय तक छिपा नहीं जा सकता। एक दिन ऐसा हुआ कि पिता के बाहर जाते ही, फूल मालाओं को धरकर, आईने के सामने गोदा खडी हो गयी। हर दिन की तरह, अपनी सुंदरता को देखती हुई, अपने आप को भूल गयी। इतने में किसी काम पर पिता विष्णुचित्त जल्दी घर वापस आ गये तो उन्होंने क्या देखा? अपनी पुत्री गोदा, भगवान मन्ननार को समर्पित करने के लिए तैयार रखी हुई मालाओं को पहनकर आईने के सामने खडी है। बस, उनके हवा - होश उड गये। लेकिन क्या करें। गोदा तो इकलौती प्रिय-पुत्री है। किसी तरह अपने आप को साँभालकर उन्होंने कहा - ''साक्षात् भगवान वटपत्रशायी को समर्पित करने तैयार रखी हुई मालाओं को पहनना महान अपराध है बेटी! मैं हमेशा यही सोचता रहा कि तू मेरी कुटिया को प्रकाशमान करनेवाली मंगल रेखा है। मेरे उस आनंद को मटियामेट करनेवाला यह दुष्कार्य करने की हिम्मत तुझमें कहाँ से आयी, यह बताओ!''

पिता के प्रश्न का समाधान गोदा का यह रहा - ''पिताजी! मुझे तो यह अपराध ही नहीं लगता है। उस जगदीश को ही मैं ने अपना पति माना है। पति के सभी वस्तुओं पर पत्नी का अधिकार तो होता ही है न? तो फिर उनकी फूलमालाओं को धारण करना दोष क्यों और कैसे होगा?''

बेटी के इस समाधान ने विष्णुचित्त को झकझोर डाला। 'आप भी उसी भगवान का प्रेमी है। लेकिन अपना प्रेम तो प्रशांत सागर सा है।' अब, अपनी इस बेटी का प्रेम तो बडे बडे तरंगों से कल्लोलित सागर सा है। अब क्या करें? विष्णुचित्त के पास, बेटी के प्रश्न का समाधान नहीं था।

''मेरी बेटी ने अपने लिए योग्य वर के रूप में उस सर्वेश्वर भगवान को ही चुना है। यह तो ठीक है, लेकिन भगवान को समर्पित करने के बाद उन्हीं मालाओं को घर ले आकर पहन ले सकती है न? पहले ही क्यों।'' इसी संशयपूर्ण स्थिति में, विष्णुचित्त ने फिर से उपवन में जाकर ताजे फूलों को चुन चुन कर लाया और मालाएँ बनाकर दिन चढने के पहले ही मंदिर में स्वामी को समर्पित कर घर लौट आ गया। लेकिन पता नहीं, क्यों, उन मालाओं में पहले का सा न आकर्षण था और न सुगंध। मंदिर के पूजारी और अन्य भक्त भी इसे देखकर हैरान हो गये। विष्णुचित्त ने भी जी छोटा करके घर लौटा और पलंग पर लेट गया। लेकिन मन में अशांति फैल गयी। ''मेरी बेटी का अपराध ही इसका कारण है।'' यही उसकी वेदना है।

निर्गंध कुसुम क्यों?

आखिर देर रात पर आँख लग गयी। एक दिव्य तेज आँखों के सामने आया और देखते ही देखते एक दिव्य रूप का आकार ले लिया। ''हे भागवतोत्तम! यह क्या किया आपने? परिमल रहित फूल मालाओं को आपने मुझे क्यों चढाया?' विष्णुचित्त को लगा कि यह उस दिव्य

देवतामूर्ति का ही स्वर है। झट उन्होंने अपनी लाडली की करतूत के बारे में उस दिव्य देवता स्वरूप को बता दिया और उसकी गलती को माफ कर देने की प्रार्थना भी की।

उसकी पहनी हुई मालाएँ ही मुझे प्यारी हैं

स्वामी के वदन में दरहास की रेखा। ''अरे ओ मंदबुद्धि! यह तेरी मूर्खता है जो कि तेरी बिटिया को मूर्ख समझ रहा है। तेरे घर में वह बडी हुई है इसीलिए तू उसे साधारण महिला समझ रहा है। लेकिन यह तो तेरा भ्रम ही है। वह तो साक्षात भूदेवी का अवतार है। आप धरी हुई सुम - मालाओं को मुझे अर्पित करने के लिए ही वह इस धरा पर अवतरित हुई है। इसीलिए, उसकी धरी हुई मालाओं से ही अपूर्व सुंदरता और परिमल मुझे मिले हैं। आज जिन मालाओं को तू ने मुझे चढाया, उनमें वह सुंदरता और परिमल नहीं है। खैर, अब तो उस लडकी के दैवीय तेज को पहचानो और इतःपूर्व की तरह उसकी पहनी हुई मालाओं को ही मुझे चढाते रहो।''

तुम आण्डाळ् ही हो

पेरियाळ्वार की आँखें खुल गयीं। अपना अपराध अब मेरु पर्वत सा दिखायी दे रहा है। झट बेटी के पास गया और कहा - ''बिटिया! तू स्वयं आण्डाळ् ही है।'' उसकी आँखे खुशी से भर आयीं।

आण्डाळ् का अर्थ है, ''रक्षा करनेवाली।'' उन्हें अब विश्वास हो गया कि अपने और अपने परिवार की रक्षा करने के लिए ही यह बालिका आयी हुई है।

आप पहनी हुई मालाओं को, स्वामी को भेजने के कारण उसे ''आमुक्तमाल्यदा'' कहा गया। ठीक यही अर्थ देनेवाला तमिल नाम 'शूडिक्कोडुत्ताळ्' (अपनी धरी हुई मालाएँ भगवान को देनेवाली) भी उसी का है।

पिता की ही नहीं, हम सबकी रक्षा करने के लिए अवतरित हुई आण्डाळ् की सन्निधि हर वैष्णवालय में रहती है।

इस तरह कोदै, गोदादेवी, आण्डाळ्, आमुक्तमाल्यदा, शूडिक्कोडुत्ताळ् ये सभी नामों से उसे संबोधित करते रहने पर भी आण्डाळ् ही सबसे अधिक व्याप्त और प्रसिद्ध नाम है।

विरह की बीन

उस दिन से आण्डाळ् कृष्ण के निरंतर ध्यान में डूब गयी। उसकी चिंता थी कि क्यों न मेरा जन्म कृष्ण के काल में हुआ? गोकुल से गाओं को चराकर लाने के समय, कृष्ण के कदमों के निशान जहाँ पडते हैं उन्हें मैं देख न पायी। शिला वर्ष के समय गो, गोपिका, तथा गोपालकों की रक्षा करने के लिए जब कृष्ण भगवान ने गोवर्धन पर्वत को उँगली पर उठाया था, उस मनोहारी दृश्य को मैं देख न पायी न। अपने सखाओं के साथ यमुना के तटों पर खेल-कूद में डूबे हुए कृष्ण को देखने का भाग्य मुझे नहीं मिला। कृष्ण को प्रीतिपात्र अन्य जगहों को भी मैं देख न सकी। इसी सोच में हमेशा डूबी रहती थी आण्डाळ्। आखिर अपने कल्पना लोक में ही उसे संतुष्ठि मिली जहाँ इस श्रीविल्लिपुत्तूर को ही गोकुल, अपना सखियों और स्वयं को गोपवनितायें, वह मानने लगी।

इसी भावना में हमेशा तल्लीन भक्तिन आण्डाळ् की उपेक्षा भला, कृष्ण कैसे कर सकता है? इसीलिए वह भी उसी के हृदय में बस गया। इतना स्थिर रूप से कि उच्छ्वास निश्वास लेना भी उस प्रेमिका के लिए कठिन हो गया। मन में बस गया वह स्वामी उसके मनोनेत्रों को ही गोचर है। आण्डाळ् की मनोकामना यह है कि स्वामी स्वयं आकर इन मांसल चक्षुओं के सामने खडे हो जायें। अब उसकी स्थिति यह हो गयी कि आसमान में नीले बादल को देख उसे ही अपना स्वामी समझ बैठती थी। बरसते बादल को देखकर कहती थी कि कृष्ण स्वयं अपने वचनामृत को इस धरा पर बरस रहा है। आँख मूँदे, या खोलें अपना प्रिय ही सर्वत्र उसे दिखायी दे रहा है।

प्रकृति से प्रार्थना

एक बार बादलों से उसने कहा - ''हे सावन के बादलों! अनमोल मोतियों और सोने को भी माँगने वालों को झट दे देनेवाले दानी हो तुमामेरी इस विरहाग्नि को बुझा नहीं सकोगे क्या? रातों में ठंडी ठंडी हवा जो चलती है, उससे मेरा विरह और भी बढ रहा है। श्री वेंकटाचल में रहते हैं मेरे स्वामी! उनके बारे में तुम जानते हो क्या? अगर जानते हो तो उसे, मेरी इस विरह की बाधा के बारे में बताकर, उसे लाकर मुझे सौंपो और पुण्य कमाओ!''

गंभीर स्वभाववाली जूही! तेरी हँसी बिलकुल मेरे स्वामी की हँसी जैसी ही है। बार बार तेरे हँसमुख को दिखाकर मुझे क्यों बाधा पहुँचा रही है? सरजोर शूर्पणखा के नाक - कान काटने के कारण, शरणागत रक्षक कहे जानेवाले श्रीराम की कीर्ति मिट गयी। लेकिन परम भागवतोत्तम

पेरियाळवार की पुत्री होते हुए मुझे अनाथ कहना तो असहनीय ही है। ये भी आण्डाळ् के विचार हैं।

इस संदर्भ में आन्ध्र भागवतकार पोतना जी की सुंदर अभिव्यक्ति की याद अवश्य आयेगी जिसमें वे कहते हैं कि वो नटखट नील वर्ण का है। उसकी आँखें कमल सी हैं। दया को वर्षा की तरह वह बरसाता है। मोर पंख को सर पर धरता है। मुसकान हमेशा छायी ही रहती है उसके मुँह पर! गोपिकाओं की मर्यादा रूपी धन को लूटकर लाया है। तनिक बताओ कि कहीं वह, तुम्हारी झाडियों के पीछे तो छिपा है क्या?

तोते को साथ भेजूँगी

नंदनवन के पेडों के बीच, कोयल की कूकू को सुनकर आण्डाळ् पागल सी हो गयी। वह तो अपने प्रिय के साथ श्रृंगार गीत गा रही है। इधर आप अकेली विरह के गीत गा रही है। आण्डाळ् ने उस कोयल की प्रशंसा करके उसे झट, अपनी सखी बना ली और उससे कहा - ''देखो, विरह को दुगुना बनानेवाली इन चाँदिनी रातों में, अगर उसका साथी उससे दूर होता तो कितना दुखदायी होगा, यह तो तू भी जानती है। इसीलिए मुझ पर दया कर, मेरे प्रिय के पास जा और उसे मेरी इस दीनावस्था को बता। उसे मेरे पास ले आ। देखो, तेरी इस सहायता के बदले में, मैं तुझे अपना तोता दे दूँगी।''

पंछियों पर निर्भर इस तपस्विनी की स्थिति के बारे में यह कितनी सुंदर अभिव्यक्ति है?

''मैं कैसे तुम्हारे कदमों तक आ जाऊँ उडके
यही मेरी उत्सुकता अब है,

उड आने के लिए आवश्यक पंख तो
शरीर को नहीं हृदय को हैं।''

''तारों को मिलाकर श्रुति में
तेरी स्तुति के गीत गाने लिया, बीन मैं ने
लेकिन क्या करें, प्रेम की परवशता में
कंठ और हाथ, गद् गद् दोनों हो गये।''

दोनों किनारों को छूती हुई, प्रवाहित हो रही है, भगवान के तीव्र विरह में व्याकुल आण्डाळ् की प्रेम नदी। उसका वेग इतना बढ गया है कि दोनों किनारे कट कर, एक बहुत बडा जलाशय सा हो गया है। आखिर, लग रहा है, यह जलाशय बडा होकर - सागर में बदल जायेगा। यह बिचारी आण्डाळ्, पता नहीं कैसे इस सागर को पार कर लेगी?

अपना सब कुछ त्यागकर, भगवान पर विश्वास रख, निर्भर रहने वालों को भी इन सारी मुसीबतों को, शायद झेलना ही होगा। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि इन सारी विषम परीक्षाओं से जीतनेवालों को ही स्वामी अपना लेते हैं।

''अनन्याश्चिंतयंतो मां ये जनाः पर्युपासते
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्''

हृदय को मात्र मुझे ही समर्पित कर मेरी आराधना करनेवाले भक्तों की देख भाल मैं ही करता हूँ - ''गीताचार्य की सूक्ति यही है न।''

सपने में विवाह

श्रीविल्लिपुत्तूर, देश के चारों छोरों से आ रहे लोगों से कचाकच भर गया है, नगर के निवासी, मार्गों में फूलों की बाटिकाएँ बना रहे हैं। सुंदर

बन्दनवारों से गलियों को अलंकृत कर रहे हैं। कदली वृक्षों और आम के पत्तों से नगर की शोभा बढ गयी है।

स्त्री पुरुष नगर को सजाने के साथ, स्वयं भी अलंकृत हो रहे है। सुगंध द्रव्यों से युक्त पानी से नहाकर स्त्रियाँ केशों को सँवार रहे हैं। फूल मालाओं को केशपाशों में रख, आँखों को काजल से सुंदर बना ले रही हैं। सोने के हार, कमरबंध, रंग बिरंगी चूडियाँ पहनकर फिर रही नारियों से नगर - आनंद का सागर सा लग रहा है।

''देखो! विवाह मंडप के पास वेदनायकी आ गई है। यज्ञ नायकी आ गई है। महिला - नायकी आ गई है। भूमि नायकी पधारी है। संगीत - नायकी देखो आ गई। वेदांत नायकी आ पहूँची।'' इस तरह चारण - भाट आदि वधू - आंडाळ् के आगमन को सूचित कर रहे हैं।

वही पेरियाळवार का घर है। विवाह के रौनक से कांतिमय उस घर में विवाह के लिए आवश्यक सभी वस्तुओं को जुटा कर रखे हुए हैं। जहाँ देखो वहाँ - विवाह का कोलाहल है। मंगलवाद्यों के संगीत से घर गूँज रहा है कि एक दूसरे की बातें सुनायी नहीं दे रही हैं।

आंडाळ् का मंगल स्नान हो गया है। फूलों सी कोमल रेशम की साडी में वह अति सुंदर लग रही है। उसकी सहेलियों की बातें भी सुनने लायक हैं - ''अरे, मुहूरत का समय हो आया है। वर तो अभी तक नहीं आया। तो फिर यह विवाह होगा कैसे?'' उसका पिता पेरियाळवार भी वर की प्रतीक्षा में व्याकुल है।

आंडाळ् का मुखमंडप भी अपने वर को अभी तक न आते हुए देख, मुरझा सा गया हुआ है। 'मुरझा सा नहीं', मुरझा ही गया है। अपनी

सखियों से वह क्या कह रही है - ''अगर मेरा प्रिय सही वक्त, पर नहीं आयेगा तो मेरे प्राण कैसे टिकेंगे? मैं इस निंदा को रोती हुई कैसे जी सकती हूँ कि मेरे विवाह का मुहूर्त स्थगित हो गया है?''

पेरियाळवार भी कह रहे हैं - मेरे इतने सालों की सेवा यही है क्या स्वामी? मुझे और मेरी बेटी को यही प्रतिफल दिया है क्या तुमने? अब तक मैं ने तुम से कुछ नहीं माँगा। यह भी तुम्हें पता है। तुम्हारे नहीं आने का कारण क्या है भला?

अरे! विवाह के मंडप में यह नीलकांति कैसी? देखो। वही कांति, लग रहा है कि क्रमशः वर का रूप ले रही है। कैसा आश्चर्य है? लग रहा है कि भूमि तथा आकाश दोनों, इस अपूर्व दृश्य को देखते हुए आनंद से तालियाँ बजा रहे हैं। वह देखो पेरियाळवार का मुखमंडल, कपूर सा कांतिमय हो गया है न? खुशी की आँसू आँखों से, मोतियों की मालाओं की तरह टपक रहे हैं। ''स्वामी! मेरी बिटिया आँडाळ् को आपके हाथों सौंप रहा हूँ - कन्यादान के रूप में। दया कर स्वीकारिये। विष्णुचित्त कह रहे हैं।''

दूल्हा शादी के मंडप में उचितासन पर बैठा हुआ है। दुल्हन भी लज्जा की राशि बन सर झुकाये हुए, तिरछी नजरों से स्वामी की तरफ देखती हुई मंडप की ओर आ रही है। ''आखिर इतनी प्रतीक्षा के बाद अपने व्रतों का फल हाथों में आ ही रहा है। इससे बढकर उसके असीमित आनंद का विषय और क्या हो सकता है?''

पुरोहित पवित्र जल को चारों तरफ छिटक रहा है। एक थाली में हल्दी कुंकुम फल, फूल, पान आदि तथा दूसरी थाली में नये वस्त्र रखे

हुए हैं। द्वादश पुंड्रा का धारण कर श्री वैष्णव भक्त, मंडप की एक तरफ तथा दूसरी तरफ विभूति धारण कर शैव धर्मावलंबी आसीन हैं।

दुल्हा - दुल्हन दोनों के सर पर जीरा तथा गुड का मिश्रण रखा गया है। मंगल ध्वनियों से भूमि तथा आकाश दोनों प्रतिध्वनित हैं। वधू के गले में दुल्हा ने मंगलसूत्र के तीनों गाँठ बाँध दिये। ब्याह की मर्यादा का यह संदर्भ बडा ही आनंददायक रहा। आण्डाळ् की खुशी की सीमा ही नहीं है। इसका वर्णन कौन कर सकता है? देखो - दुल्हा, दुल्हन दोनों, अग्निदेवता को परिक्रमा (फेरे) कर रहे हैं। अब स्वामी आण्डाळ् के दायें पैर का अंगूठे को पकडकर उससे उखल को दबाने का आचार करवा रहा है। वे दोनों एक दूसरे के सरों पर मंगल - तंडुल डाल रहे हैं - मुसकान भरे वदनों से! यह दृश्य कितना मनोहारी है?

अब दुल्हा दुल्हन दोनों हौदे से अलंकृत हाथी पर शोभा - यात्रा के लिए निकले हैं। नव दंपति पर दूसरों की नजर न लगने के लिए, पेरियाळवार 'तिरुप्पल्लाण्डु' गाते हुए उनके साथ चल रहे हैं।

आण्डाळ् ने पुलकित मन से आँखे खोलकर देखा तो एक सहेली के सिवा दूसरा कोई भी नहीं है। यह क्या है। अभी तक जो मैं ने देखा, वह असली शादी नहीं है? मात्र स्वप्न है? आण्डाळ् की वेदना का अंत ही नहीं रहा।

धनुर्मास का व्रत

पिताजी पेरियाळवार तो ज्ञान, भक्ति एवं वैराग्य की निधि है। उनकी देखभाल में पली आण्डाळ् में भी ये सभी गुण समृद्ध हैं।

'पितुश्शतगुणं पुत्रः' सूक्ति के अनुसार एक के सौ के हिसाब से ये सभी गुण उनमें भी विद्यमान हैं।

एक पुरुष दूसरे पुरुष को चाहना या एक स्त्री दूसरी स्त्री से प्यार करना तो असंभव है। ऊँचे पर्वत को चढने की तरह है। स्त्री और पुरुष के बीच - प्यार संभव है। ऊँचे पर्वत से नीचे उतरने का सा है। पेरियाळ्वार से भी आण्डाळ् का भगवान के प्रति प्रेम सहज सुंदर है। अपनी धरी हुई फूलमालाओं को सप्रेम, अपना भाग्य समझकर पहननेवाले से प्यार कौन स्त्री नहीं करेगी भला? जिस पर साक्षात् भगवान कृष्ण ही वह पुरुष हो तो फिर उस तरुणी के भाग्य की बात क्या कहें?

हरि के भक्तों में गोपिकाओं का स्थान सर्वप्रथम है। भगवान के प्रति उनका निरीह प्यार ही इसका कारण है।

आण्डाळ् ने देखा कि गोपिकाओं की भक्ति से बढकर कोई और भक्ति ही नहीं है। कृष्ण के प्रति उनके प्रेम का आविष्कार पोतना ने सुंदर रीति में किया है।

''सिरिकि नुदारचिह्नमुलु सेयु भवच्चरणारविंदमुल्
सरसिजनेत्र! मा तममु संपद जेरितिमेट्टकेलकुन्
मरलगलेमु, मा मगल माटलनोल्लमु, पद्मगंधमुन्
मरगिन तेटुलन्यकुसुमंबुल चेंतकु जेरनेर्चुने?''

हे स्वामी! लक्ष्मी देवी की सेवा को बडी ही उदारता से स्वीकार करनेवाले तुम्हारे चरणारविंदों के पास आखिर हम पहुँच ही गये है। यही हमारे व्रतों का फल है। अब हम यहाँ से वापस नहीं जायेंगी। हमारे पतियों की बातें अब हमें नहीं चाहिये बस। अब तुम्हीं हमें बताओ कि

कमल के सौरभ से परिचित होने के बाद, भ्रमर फिर अन्य कुसुमों को ताकते भी हैं क्या?

गोपिकायें जिस तरह अपने घर - बार छोडकर, परिवार को छोडकर उस कन्हैया के प्रेम में पागल हो गयी, उसी तरह गोदा भी भगवान विष्णु के प्रेम में तल्लीन हो हमेशा सोचने लगी कि एकांत में उस जगदीश्वर से कब मिलें और श्रृंगार में डूबें कैसे?

कात्यायनी व्रत

हरि से मिलन के लिए अपनी पुत्री गोदा की व्याकुलता, पिता विष्णुचित्त को बहुत खलने लगी। वीतराग पिता अपनी बेटी को भगवद्प्राप्ति के मार्ग बताने लगा - ''बेटी! तुम्हारी ही तरह द्वापर युग की गोपिकाओं ने भी श्री कृष्ण को प्राप्त करने के लिए तरह तरह के प्रयत्न किये थे। लेकिन फल तो नहीं मिला। आखिर उन सबने मिलकर धनुर्मास में एक महीने भर के लिए गौरीदेवी के नाम पर कात्यायनी व्रत, बडी निष्ठा से रखा। अगर तुम भी इस व्रत का आचरण करोगी तो तुम्हारी इच्छा की अवश्य पूर्ति होगी।''

तिरुप्पावै

पिता का उपदेश पुत्री को अच्छा लगा। झट उसके आचरण में निमग्न हो गयी। ठंडे पानी में हाथ रखेंगे तो तत्क्षण हाथ पत्थर जैसे हो जा रहे हैं। इतनी ठंड में भी गोदा भोर में ही नींद से उठकर, कावेरी नदी में नहाने निकल पडती है। भगवान को समर्पित आहार को लेकर, एक भुक्त रहती हुई, खाली जमीन पर ही सो रही है। इतना ही नहीं, हर दिन एक गीत के हिसाब से अपने प्रिय पर गीत लिखकर गा रही है। वही तीस गीतों का दिव्य प्रबंध ''तिरुप्पावै'' है।

तिरुप्पावै का अर्थ है - संपदा दिलानेवाला छंद। छंदोबद्ध इस काव्य का पाठ कर भगवान विष्णु की पूजा - अर्चना करनेवालों की मनोवांछाएँ अवश्य पूरी होगी। तमिल में इसे तिरुप्पावै कहते हैं जिसका ''संपदा दिलानेवाली देवी'' नामक एक और अर्थ भी है।

कृष्ण के सिवा कोई नहीं चाहिए

किसी भी लता को वृक्ष का आधार चाहिए ही। इसी तरह स्त्री के लिए किसी भी एक पुरुष को, पति के रूप में पाना ही होता है। विवाह के लिए योग्य आयुवाली अपनी पुत्री जानकी को देखकर राजा जनक, मन ही मन चिंतित होता था कि अपना दामाद कौन होगा? पेरियाळवार भी तुलसी - वन में मिली हुई गोदा को अपनी पुत्री बना लिया ''विवाह के लिए योग्य आयु आते ही गोदा, के लिए दुल्हे को ढूँढने में लग गया। अपने लिए वर को ढूँढ रहे पिता को देखकर गोदा ने कहा - ''पिताजी! मेरे विवाह के बारे में आप उतावला मत होइये। आप तो अच्छी तरह जानते हैं कि मैं ने गोपालकृष्ण को ही अपना वर चुन लिया है। इसीलिए किसी और मानव को अपने पति के रूप में स्वीकारना तो सपने में भी नहीं हो सकता है। मेरी चिंता छोड आप निश्चिंत रहिये। मेरा पति तो वही है।''

बेटी की इन बातों को सुनकर पिता थोडा तो खुश हो गया। कहने लगा - ''बेटी, इस धरा पर 108 वैष्णव दिव्य देश हैं। दक्षिण के पाण्ड्य देश में 18, केरल में 14, चोळ देश में 42 और तुंडीर में 23 तथा उत्तर भारत देश में 11 हैं। उन उन विष्णु मूर्तियों के अवतार वैभव का वर्णन

करूँगा, उनकी मूर्तियाँ दिखाऊँगा। उनमें से अपने मनोहारी को तुम्हीं चुन लो।'' बेटी ने 'हाँ' कर दी।

श्री रंगनाथ ही मुझे भाये!

पिताजी एक एक करके सभी अर्चामूर्तियों के अवतार वैभव तथा, महिमा का वर्णन करते जा रहे थे और बेटी सुनती जा रही थी। उत्तर की मथुरा के स्वामी श्रीकृष्ण का इतिहास सुनकर गोदा पुलकित हो गयी। रमणियों के चित्तचोर पद्मावती - नाथ, श्री वेंकटेश के बारे में सुनकर उसका मुँह अशोक वृक्ष के फूलों सा लाल लाल हो गया। लेकिन श्री रंगनाथ की सुंदरता, कोमलता तथा सुगुणशीलता के बारे में सुनकर उसका मन वही अटक गया। उस स्वामी के रमणीय रूप को देखकर, उसका वदन - पूनम का चन्द्रमा ही हो गया। इससे स्पष्ट है कि उन सब अवतार मूर्तियों में से सर्वाधिक रीति से श्री रंगनाथ ने ही गोदा को अपनी ओर आकृष्ट किया है।

श्री रंगनाथ की महिमा

पेरियाळवार ने श्री रंगनाथ स्वामी की महिमा का वर्णन इस तरह किया - ''बिटिया! श्री रंगनाथ इस सृष्टि के पूर्व ही स्वयंव्यक्त हुआ था। ब्रह्मा ने उसकी अर्चना की थी। रघुवंश के सर्वप्रथम राजा इक्ष्वाकु महाराजा के वंश के देवता है वे। उनसे लेकर श्री रामचन्द्रजी तक के सभी चक्रवर्ती इसी देवता की पूजा - अर्चना कर मोक्ष को प्राप्त हो गये। इसी स्वामी ने, राक्षसों के राजा विभीषण पर कृपा कर, उसे अपना भक्त बताया था। श्री वैकुंठ में विराजमान अपर वासुदेव ही है ये श्री रंगनाथ।''

तुम धन्य हो बिटिया!

पांचरात्रागम के प्रवक्ता यही महापुरुष हैं। द्राविड दिव्य प्रबंधों में ये ही स्वामी प्रमुखतया प्रस्तावित हैं। अपने भक्तजनों के नित्य आराध्य हैं ये स्वामी। सिर्फ तोंडरप्पोडियाळवार को छोडकर, बाकी सभी आळवारों द्वारा मुक्त कंठ से कीर्तित हैं ये स्वामी! अपने अनन्य भक्तों के दोषों को भी अनदेखा कर, बडे प्रेम से उनकी रक्षा करनेवाले परमात्मा हैं ये स्वामी! इनकी अर्धांगी है श्रीरंगनायकी। उनके साथ उभय कावेरी के मध्य भाग में 'श्रीरंग' नामक दिव्य क्षेत्र में, योग निद्रा में लेटे हुए हैं ये स्वामी! वे स्वामी, श्रीरंगेश को स्वामी के रूप में स्वीकार करनेवाली मेरी इस पुत्रिका को पाकर मैं धन्य हुआ। तू भी धन्य है।

श्री रंगनाथ से विवाह

उस मामाजी की प्रसन्नता का कौन वर्णन कर सकता है जिसकी बेटी ने श्रीरंगनाथ को अपना पति चुन लिया है? लेकिन, दूसरे ही क्षण उसके हृदय पर चिंता के बादल छा गये। ''हे भगवान! मैं तो खुश हो रहा हूँ कि मेरी बेटी ने उस परमात्मा को अपना पति मान लिया है। लेकिन मैं ने यह नहीं सोचा कि उनका ब्याह रचने में कैसी मुसीबतें आ सकती हैं? वह भगवान ऐसे ही ब्याह के लिए आ जाता है क्या? अगर आ भी जाय तो उसके साथ आनेवाले अन्य देवी देवताओं का अतिथि सत्कार मैं क्या कर पाऊँगा?''

उधर आण्डाळ् के मन में संपूर्ण विश्वास है कि वह अवश्य उस रंगनाथ को ही अपना पति बना लेगी। इतने में फिर से धनुर्मास आ गया। इतः पूर्व जिस तरह उसने धनुर्मास में व्रत कर श्रीकृष्ण का वरण किया

था ठीक उसी तरह तिरुप्पावै के तीस पाशुरों (गीतों) का मनन - पाठन करते हुए स्वामी की पूजा - अर्चना वह करने लगी। आखिर एक दिन स्वामी रंगनाथ ने उसे सपने में दर्शन देकर कहा - ''प्रिये! तुम्हारी तपस्या और हृदय की शुद्धता - मुझे अच्छी लगी हैं। तुम्हें जरूर मैं अपना लूँगा। यह मेरा वादा है। अब तुम इस व्रत के नियमों को छोडकर सकल सुखों को भोगो। अब आण्डाळ् की खुशी की सीमा न रही। उसी क्षण से वह, भगवान की आज्ञा के अनुसार सभी सुखों को भोगने लगी और उसी दिन को 'भोगी' नाम आ गया। (संक्रांति पर्व का पहला दिन)''

श्रीरंगनाथ की आज्ञा के अनुसार, मंदिर के अधिकारी मंगल वाद्यों तथा छत्र चामरादि के साथ श्रीविल्लिपुत्तूर में स्थित विष्णुचित्त के घर गये। उसे साष्टांग नमस्कारादि करके उन्होंने कहा - ''श्री रंगनाथ स्वामी ने हमें यहाँ भेजा है। उन्होंने कहा कि आपकी बेटी आण्डाळ् से, श्रीरंगम् में वे विवाह करेंगे। इसीलिए उन्होंने कहा कि आप सबको श्रीरंगम् में ले आयें।''

अब तो उन पिता - पुत्रिका के आनंद की सीमा ही न रही।

विवाह के लिए रवाना

भगवान श्रीरंगनाथ की पालकी में दुल्हन को उन्होंने बिठा दिया। छत्र - चामरादि तथा मांगल वाद्यों के साथ दुल्हन के घर वाले निकल पडे। मार्ग पूरा रंग बिरंगे फूलों की मालिकाओं से सजाया गया है। विष्णुचित्त का शिष्य मत्स्य - ध्वज भी अपने गुरुजी के साथ है। चोळ् चेर - पाण्ड्य प्रांत के लोग सभी, इस विवाह को देखकर धन्य हो जाने के लिए श्रीरंगम् पहुँच गये।

श्रीरंगम मंदिर के सातों प्राचीरों को कदली वृक्ष शाखाओं और आम के पत्तों से सजाया गया है। जहाँ देखों वहाँ सुंदर रंगोलियाँ हैं। शुभ मुहूर्त में वधू आण्डाळ् को, मंगळ स्नान के बाद विविध आभूषणों से सुसज्जित कर, पालकी में बिठा, भगवान श्री रंगेश के पास, ले गये, संस्कृत तथा द्रविड दिव्य प्रबंधों का पारायण करते हुए श्री वैष्णव पंडित भी भगवान की सन्निधि में हैं। उस पालकी के दोनों तरफ विष्णुचित्त तथा मत्स्य ध्वज खडे हैं। श्री रंगेश की महिमा का वर्णन सभीयों के कानों में अमृत भर रहा है। वह शोभायात्रा प्रधान द्वार तक पहुँचते ही आस पास के भवनों पर खडी हुई महिलाओं ने वधू पर मांगलिक रीति में पुष्पों की वर्षा की। इस तरह वधू, मंदिर के सातों प्राचीरों की परिक्रमा कर शंतनु मंडप में पहुँच गयी।

श्रीरंगेश भी मंगळ स्नान कर, सकल आभूषणों से विभूषित होकर, वधू की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सुमुहूर्त में सभी देवी देवताओं के समक्ष श्रीरंगेश ने गोदादेवी का पाणिग्रहण किया।

आण्डाळ् श्रीरंगेश में विलीन हो गयी

श्रीरंगेश की अर्धांगी आण्डाळ्, शेषशय्या पर लेटे हुए मूलविराट स्वामी के पास जाने के लिए तरसने लगी। श्री रंगनाथ स्वामी के मंदिर के विमान की प्रदक्षिणा कर, गोदा, स्वामी की शेषशय्या की तरफ बढी। उस स्वामी के असमान सौंदर्य, लावण्य व सौंदर्य की जी भर अनुभव पाकर, वह साध्वी, शेषशय्या पर चढकर स्वामी की चरण सीमा तक पहुँचने के बाद, अंतर्हित हो गयी।

अपनी पुत्री को न पाकर विष्णुचित्त के दुख का अंत न रहा। ''यह आखिर सपना है या सच है? यह कैसा हुआ? मेरी अपनी बेटी मुझे छोडकर इस तरह चली गयी कैसे? वह भी हमेशा के लिए? असली बेटी से पाली पोसी हुई बेटी पर माता पिता को कितना अधिक प्यार होता है दूसरों को क्या पता?''

शोक - समुद्र में डूबे हुए उस महर्षि को सांत्वना देते हुए श्री रंगेश ने कहा - ''मामाजी! साधारण मानवों की तरफ इस तरह आपका चिंतित होना अनुचित है। आपकी इच्छा की पूर्ति करने के लिए ही मैं ने यह शादी रची है। तो फिर शादी के बाद लडकी अपने ससुराल को जाती ही है। ऐसा न होना अनुचित है न? आप तो अच्छी तरह जानते हैं कि वह भूदेवी का अवतार है। यहाँ इस भूमंडल पर उसका काम हो गया है तो इसीलिए मुझमें वह विलीन हो गयी है। यह सहज है न। उसके कार्यों का स्मरण करते हुए, उसके गीतों का मनन - ध्यान में शेष जीवन किसी भी तरह बिता दीजिये।''

इन बातों से विष्णुचित्त का मन, दृढ हो गया और वापस, श्रीविल्लिपुत्तूर जाकर, फिर से वटपत्रशायी को मालाओं को समर्पित करने की दिनचर्या में जुट गये।

श्री रंगनाथ स्वामी ने प्रत्येकतया, आण्डाळ् के लिए अपने ही मंदिर में एक और मंदिर बनवाया और उसके लिए नित्योत्सवों का प्रबंध भी करवाया। तब से हर श्री वैष्णव मंदिर में गोदा की अर्चना पूजा की विधि की शुरुआत हुई।

स्वाधीन पतिका

भगवान के प्रति अनन्य प्रेम से एक मानव - कांता ने कई जन्मों की तपस्या से भी असंभव, भगवान के दर्शन ही नहीं बल्कि उनसे विवाह भी कर, इस लोक से देवतालोक को जाना - तो आश्चर्यजनक और दुखदायी कहानी है।

हर एक मनुष्य को, वह कितना ही संपन्न या कीर्तिमान हो, आखिर एक दिन इस शरीर को त्यागकर जाना ही पडेगा। लेकिन वही महापुरुष है जो अपने अस्तित्व से लोगों का उद्धार करे। गोदादेवी वैसी संपूर्ण मानव महिला है। भूदेवी की अंशरूपा होते हुए भी मानवों के करने में सुलभ साधना - मार्गों को ही उसने कर दिखाया। उसने अपनी साधना से यह प्रमाणित किया कि भक्ति - योग के द्वारा कितने ही बडे आशय की सिद्धि हो सकती है। स्वयं पुष्प मालाओं को पहन कर उन्हीं को भगवान को समर्पित करना ही नहीं, स्वरचित कविता मालिकाओं से अपने प्रिय, भगवान को ही अपने वश कर लेनेवाली स्वाधीन पतिका है वह! महान पतिव्रता है वह! इसीलिए विष्णुचित्त ने उसकी प्रशंसा की कि उस वटपत्रशायी को फूल मालिकाओं से आकृष्ट करने के लिए ही नहीं, मेरे सभी पूर्वजों की भी रक्षा करने के लिए अवतरित आण्डाळ् है तू!''

आण्डाळ् का कविता सौरभ

इस तरह आण्डाळ् मात्र अपने पति और पिता के वंशजों को धन्य करने के लिए ही इस धरा पर अवतरित नहीं हुई है। संसार रूपी कीचड में फँसे हुए हम सभीयों का उद्धार करना भी उसके अवतार का उद्देश्य

है। उसकी कथा - मात्र का मनन करते हुए हमें संतुष्ट होना नहीं चाहिए। उसके रचित गीतों को भी अवगत कर, मोक्षार्थी हो, हमारे सुरों में मिलाकर, उसका गायन करें तो हम भी उस भगवान के चरण कमलों तक पहुँच पा सकते हैं। आण्डाळ् की सर्वप्रथम रचना, सुप्रसिद्ध है जो तीस गीतोंवाली रचना - तिरुप्पावै है। वे तीसों गीत - तीस मणियाँ हैं। मात्र अपने स्वार्थ के लिए ही नहीं, बल्कि इस सारे संसार के कल्याण के लिए ही उसने इस तिरुप्पावै की रचना, तन मन और कर्म से की। उसके तीसरे पाशुरम में यह बात स्पष्ट रूप में कहा गया है।

आण्डाळ् अपनी सखियों से कह रही है - ''वामन के रूप में अवतरित होकर भी, विष्णु ने अपने आकार को इतना बढाया कि तीनों लोकों तक वे विस्तरित हो गये। वैसे पुरुषोत्तम का कीर्तिगान 'धनुर्मास' के व्रत में हम करेंगें तो देश में, हर महीने में तीन बार वर्षा होगी। अकाल कभी नहीं होगा। खेतों में मछलियाँ उत्साह से उछल - कूद करती रहेंगी। कमल के फूलों में भ्रमर सोते रहेंगे तथा गाय बिना किसी प्रयास के घडों भर दूध देंगी।''

इस पूरे काव्य में प्राण समान गीत शित्तुम शिरूकालै नामक 28 वाँ गीत पाशुरम है जिसका भाव अतीव सुंदर है।

गोपिकायें कह रही हैं

हे स्वामी! भोर के समय में ही तुम्हारे चरण कमलों की पूजा करके आये हैं हम। इसका फल हमें क्या होना चाहिए, तनिक सुनो! गायों को चराते हुए जो पाये उसे ही खाते हुए जीवन काटनेवाले गोपालक हैं हम! लेकिन तुम्हारे ही दास हैं हम! इसीलिए हमारे इन हृदयों के भोग (देवार्थ

भोजन) तुम्हें स्वीकारना ही होगा। मात्र सांसारिक लाभ के लिए हमने यह व्रत नहीं रखा है। तुम्हारे साथ सदा सर्वदा रहना चाहते हैं हम! हमारे तन, मन तथा कर्मों से सिर्फ तुम्हारे पूजा - अर्चना हम कर सकते हैं। हमारी अन्य वांछाओं को तुम्हीं मिटा डालो हे गोविंद!

हमें सदा तुम्हारी सेवा में रहना चाहिए। बाकी हमारी सारी वांछाओं को, तुम्हें ही कोंपल की दशा में ही निकाल फेंक देना है। यही श्री वैष्णव संप्रदाय का सारांश है। गोदादेवी का ही नहीं, हम सभीयों का यही लक्ष्य होना चाहिए। यही जीवन का अर्थ है। सभी आळवारों के संदेशों को ही आण्डाळ् ने सशक्त दोहराया है। इसीलिए आण्डाळ् को भी हमारे पूर्वजों ने आळवारों में स्थान दिया है।

आण्डाळ् की दूसरी रचना 'नाच्चियार तिरुमोळि' है जिसका अर्थ है 'नायिका की श्री सूक्ति' 143 पाशुरों के इस प्रबंध में 14 दशक हैं। दशक का अर्थ है दसगीतों का समाहार। कुछ दशकों में ग्यारह गीत भी हैं। यह केवल भगवान से दूर होने के विरह का काव्य है। भक्त का भगवान से बिछुड जाने पर जो वेदना होती है,उसी की अभिव्यक्ति इस में है। इसके दो पाशुरों का अर्थ संग्रह रूप में कुछ इस तरह है।

आण्डाळ् मैय्या, स्वामी के पांचजन्य शंख से कह रही है ''हे गंभीर श्वेत शंख! कुवलयापीड नामक मदमत्त हाथी के दाँतों को उखाडकर, उसे मार देनेवाले महाबलवान श्री कृष्ण के अधरों की मिठास कैसे होती है? कपूर का सौरभ उससे निकलेगा या लाल कमल का परिमल? या वे अमृत जैसा मधुर भी होगी वह मिठास?'' (7 वें दशक का पहला गीत)

नीलघन श्याम उस वेंकटनाथ को अपनी इस विरह वेदना के बारे में बताकर, उन्हें लिवा लाने की प्रार्थना करती है - आण्डाळ् ''आसमान में नीले परदे की तरह छाये हुए हे बादल! मेरा स्वामी श्रीनिवास उस वेंकटाचल पर निवास करता है जहाँ चारों तरफ स्वच्छ सुंदर तीर्थ भरे पडे हैं। अपने ही जैसे श्याम वर्णवाले तुम लोगों के साथ कही वह स्वामी भी यहाँ पर आ गया है क्या? विरह वेदना मेरी इतना तीव्र है कि आँसुओं की धाराओं से मेरा वक्षःस्थल भीग जा रहा है देखो! इस अबला को इतनी पीडा देना क्या उस स्वामी को जँचता है? यह चर्चा, उस उदार बुद्धिवाले स्वामी की कीर्ति को शोभा देती है क्या?'' (8 वाँ दशक - पहला गीत)

''कर्कटे पूर्वफल्गुन्याम् तुलसीकाननोद्भवाम्
पाण्ड्ये विश्वंभराम् गोदां वंदे श्रीरंगनायकीम्''

* * *